



भारतीय मूल्य-व्यवस्था में धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र का परस्पर संबंध

➤ डा० पवन पाठक¹

सारांश

यह शोध-पत्र भारतीय मूल्य-व्यवस्था, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के गहन और अटूट अंतर्संबंधों का एक विस्तृत दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय लोकतंत्र मात्र एक आधुनिक राजनीतिक ढांचा नहीं है, बल्कि इसकी जड़ें हजारों वर्षों की सांस्कृतिक विरासत, वैदिक कालीन 'सभा-समिति' की परंपरा और उपनिषदों के समतावादी जीवन-दर्शन में निहित हैं। जहाँ पाश्चात्य धर्मनिरपेक्षता राज्य और धर्म के पूर्ण अलगाव पर जोर देती है, वहीं भारतीय अवधारणा 'सर्वधर्म समभाव' के सिद्धांत पर आधारित है, जो सभी पंथों के प्रति समान सम्मान और सहिष्णुता का पोषण करती है।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे गुण केवल संवैधानिक प्रावधान नहीं हैं, बल्कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' जैसे शाश्वत सिद्धांतों का आधुनिक रूपांतरण हैं। शोध-पत्र इस बात पर बल देता है कि वर्तमान समय में सांप्रदायिकता, जातिवाद और राजनीति के अपराधीकरण जैसी जो भी चुनौतियाँ उभर रही हैं, उनका स्थायी समाधान भारतीय मूल्यों—जैसे अहिंसा, करुणा और लोकसंग्रह—को पुनर्जीवित करने में ही संभव है। अंततः, यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय लोकतंत्र की सफलता इसकी विविधता में एकता बनाए रखने की क्षमता में है, जो विश्व के लिए एक अनुकरणीय मानवीय और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का मॉडल प्रस्तुत करती है।

मुख्य शब्द : धर्म, भारतीय लोकतंत्र, भारतीय मूल्य व्यवस्था, भारतीय दर्शन, भारतीय संस्कृति

1. प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति का मूलभूत स्वरूप केवल भौतिक उपलब्धियों या राजनीतिक संस्थाओं पर आधारित नहीं रहा है, बल्कि इसका निर्माण उन गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर हुआ है, जिन्होंने समाज को

हजारों वर्षों तक दिशा और स्थिरता प्रदान की। भारतीय मूल्य-व्यवस्था का तात्पर्य उन जीवन-आदर्शों, नैतिक मानकों और सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांतों से है, जो व्यक्ति और समाज दोनों के आचरण को नियंत्रित और मार्गदर्शित करते हैं। इन मूल्यों में सत्य, अहिंसा,

¹ असिस्टेंट प्रोफेसर दर्शनशास्त्र विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, फाफामऊ, प्रयागराज

सहिष्णुता, करुणा, समता, न्याय, बंधुत्व और लोकसंग्रह प्रमुख हैं।

भारतीय परंपरा में धर्म को केवल धार्मिक कर्मकांडों तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि इसे जीवन के प्रत्येक आयाम का नियामक तत्व समझा गया। धर्म ही वह सिद्धांत है जो व्यक्ति को कर्तव्य, समाज को संगठन और राष्ट्र को आदर्श प्रदान करता है। इसीलिए *मनुस्मृति* में कहा गया है—

“धर्मो रक्षति रक्षितः”

(धर्म की रक्षा करने वाला धर्म स्वयं उसकी रक्षा करता है।)

भारतीय लोकतंत्र की जड़ें भी इन्हीं धार्मिक-दार्शनिक मूल्यों में निहित रही हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक यहाँ सामूहिक निर्णय, सभा-परिषद्, पंचायत और गणराज्यों की परंपरा रही है, जो लोकतंत्र के मूलभूत स्वरूप को प्रकट करती है।

वर्तमान में जब भारत ने संवैधानिक रूप से धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र को अपनाया है, तब प्रश्न यह उठता है कि भारतीय मूल्य-व्यवस्था और आधुनिक लोकतंत्र के बीच किस प्रकार का संबंध स्थापित होता है? क्या धर्मनिरपेक्षता भारतीय मूल्य-व्यवस्था का विरोध करती है या उसे नए रूप में अभिव्यक्त करती है?

2. शोध का महत्व

भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, परंतु इसका महत्व मात्र संख्यात्मक नहीं है। यह लोकतंत्र भारतीय सांस्कृतिक धरोहर और मूल्य-परंपरा की गहराइयों से निकला हुआ है। इसकी आत्मा केवल चुनाव, संसद और सरकार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उस जीवन-दर्शन पर आधारित है जिसमें-विविधता में एकता (Unity in Diversity), सर्वधर्म समभाव, वसुधैव कुटुम्बकम् व लोकसंग्रह और सर्वजनहिताय जैसे सिद्धांत निहित हैं।

आज के समय में जब वैश्विक स्तर पर धार्मिक असहिष्णुता, उग्र राष्ट्रवाद, सांप्रदायिकता और जातिवाद

लोकतंत्र को चुनौती दे रहे हैं, तब भारतीय मूल्य-व्यवस्था में निहित धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र का अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह अध्ययन न केवल भारतीय राजनीति को समझने में सहायक है, बल्कि वैश्विक लोकतांत्रिक विमर्श को भी नई दिशा प्रदान कर सकता है।

यद्यपि भारतीय संविधान ने भारत को “पंथ-निरपेक्ष, समाजवादी, लोकतांत्रिक गणराज्य” घोषित किया है, तथापि व्यावहारिक स्तर पर कई चुनौतियाँ सामने आती हैं।

-राजनीतिक दल प्रायः धार्मिक भावनाओं का दुरुपयोग करते हैं।

-समाज में सांप्रदायिक तनाव और धार्मिक ध्रुवीकरण बढ़ते रहते हैं।

-जातिगत पहचान लोकतांत्रिक मूल्यों से टकराती रहती है।

इस पृष्ठभूमि में मुख्य समस्या यह है कि क्या भारतीय लोकतंत्र अपनी मूलभूत मूल्य-व्यवस्था के अनुरूप विकसित हो पा रहा है? क्या धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के बीच समन्वय स्थापित हो सका है?

इस शोध-पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

1. भारतीय मूल्य-व्यवस्था की दार्शनिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवेचन करना।
2. भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को प्राचीन परंपरा से जोड़कर देखना।
3. धर्मनिरपेक्षता की भारतीय अवधारणा को स्पष्ट करना और उसे पश्चिमी अवधारणा से अलग पहचानना।
4. भारतीय मूल्य-व्यवस्था और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र के बीच परस्पर संबंध का विश्लेषण करना।
5. आधुनिक भारत में धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की चुनौतियों और संभावनाओं पर विचार करना।

इस शोध में ऐतिहासिक, दार्शनिक और तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

- **प्राथमिक स्रोत** : वेद, उपनिषद, गीता, बौद्ध साहित्य, संविधान, गांधी, नेहरू और आंबेडकर के लेखन।
- **द्वितीयक स्रोत** : आधुनिक विद्वानों की पुस्तकें, शोध-पत्र और आलेख।

तुलनात्मक दृष्टिकोण से भारतीय और पाश्चात्य विचारों की समीक्षा की जाएगी, ताकि भारतीय धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की विशिष्टता स्पष्ट हो सके।

भारतीय जीवन-दर्शन में चार पुरुषार्थों की अवधारणा—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—मानव जीवन को संतुलित और सार्थक बनाने हेतु प्रतिपादित की गई है। इनमें धर्म सर्वोपरि है क्योंकि धर्म ही अर्थ और काम को मर्यादित करता है तथा मोक्ष की दिशा दिखाता है।

भारतीय परंपरा में धर्म का अर्थ केवल पूजा-पाठ नहीं बल्कि—

- सत्य,
- अहिंसा,
- दया,
- करुणा,
- परोपकार,
- समता,
- न्याय

जैसे मूल्यों का पालन करना है। यही मूल्य आगे चलकर लोकतंत्र के आधार बने। भारत में लोकतंत्र की परंपरा आधुनिक युग की देन नहीं है। वैदिक काल में सभा और समिति, बौद्ध काल में संघ और गणराज्य, तथा मध्यकाल में पंचायत व्यवस्था लोकतांत्रिक आदर्शों की जड़ें थीं।

- ऋग्वेद में सभा और समिति को सामाजिक निर्णय लेने वाली संस्थाओं के रूप में वर्णित किया गया है।

- बौद्ध संघ में संघ-सभा के निर्णय बहुमत से लिए जाते थे।

- लिच्छवि गणराज्य और अन्य महाजनपदों में गणतांत्रिक शासन का स्वरूप था।

इस प्रकार भारतीय लोकतंत्र की जड़ें सहस्राब्दियों पुरानी हैं और यह मूल्य-व्यवस्था का ही परिणाम है कि यहाँ जनता को निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाता था।

पाश्चात्य संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है—राज्य और धर्म का पूर्ण पृथक्करण। परंतु भारतीय संदर्भ में इसका अर्थ है—सभी धर्मों का समान सम्मान और उनके प्रति तटस्थ दृष्टि। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप इस प्रकार है कि राज्य किसी धर्म का पक्षपात नहीं करेगा, किंतु प्रत्येक धर्म के संरक्षण और संवर्धन में सहायक होगा।

भारतीय धर्मनिरपेक्षता का मूल भाव है—“सर्वधर्मसमभाव”, अर्थात् सभी धर्मों के प्रति समान दृष्टि। यही भारतीय मूल्य-व्यवस्था की विशेषता है। परन्तु आज का विश्व असहिष्णुता, धार्मिक उग्रवाद और सांप्रदायिक राजनीति की चुनौतियों से जूझ रहा है। भारत में भी कभी-कभी धार्मिक आधार पर हिंसा और विभाजन की घटनाएँ सामने आती हैं। ऐसे समय में भारतीय मूल्य-व्यवस्था में निहित धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र का समन्वय शांति, समता और बंधुत्व की दिशा में मार्गदर्शन कर सकता है।

भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता भारतीय मूल्य-व्यवस्था की ऐतिहासिक धरोहर हैं। भारतीय धर्मनिरपेक्षता पश्चिमी सेक्युलरिज़्म से भिन्न है क्योंकि यह सभी धर्मों का समान सम्मान करती है। लोकतंत्र केवल राजनीतिक व्यवस्था नहीं बल्कि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः अभिव्यक्ति है।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र परस्पर जुड़े हुए हैं। भारतीय समाज की आत्मा

इन मूल्यों में ही निहित है। यही कारण है कि भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होते हुए भी विविधता में एकता का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है

भारतीय संस्कृति और सभ्यता की निरंतरता का रहस्य उसकी मूल्य-व्यवस्था में छिपा हुआ है। यहाँ के जीवन-दर्शन ने युग-युगांतर तक मानव मात्र को यह सिखाया है कि जीवन का लक्ष्य केवल भौतिक समृद्धि या व्यक्तिगत लाभ नहीं है, बल्कि समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता के कल्याण में ही वास्तविक सार्थकता है। इसीलिए भारतीय मूल्य-व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है, क्योंकि धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र दोनों ही इन्हीं मूल्यों की उपज हैं।

भारतीय इतिहास को यदि हम गहराई से देखें तो पाएँगे कि प्रत्येक कालखंड में मूल्य-व्यवस्था का स्वरूप भले ही परिवर्तित हुआ हो, पर उसकी आत्मा सदैव जीवित रही है। ऋग्वैदिक काल की सभा-समिति, उपनिषदों का ब्रह्मविद्या और समता भाव, महाभारत का लोकसंग्रह, बुद्ध और महावीर की अहिंसा और करुणा, तथा आधुनिक युग में गांधी का सर्वधर्मसमभाव—ये सभी उदाहरण मूल्य-व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास को प्रमाणित करते हैं।

वैदिक काल को भारतीय संस्कृति का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस काल में धर्म, आचार और सामाजिक व्यवस्था का आधार वेदों में प्रतिपादित सिद्धांत थे। ऋग्वेद में ऋत की संकल्पना आती है, जिसका अर्थ है—सत्य और नैतिक नियमों पर आधारित सार्वभौमिक व्यवस्था। ऋत का पालन ही व्यक्ति और समाज के लिए धर्म माना गया। यही सिद्धांत आगे चलकर न्याय, समता और संतुलन का आधार बना।

वैदिक युग में 'सभा' और 'समिति' नामक संस्थाएँ थीं, जिनमें सामाजिक-राजनीतिक निर्णय सामूहिक रूप

से लिए जाते थे। यह लोकतांत्रिक विचारधारा का प्रारंभिक रूप था।

ऋग्वेद में प्रार्थना की गई—“संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।” (सभी मिलकर चलें, मिलकर बोलें और अपने मन को एक करें) यह श्लोक सामूहिकता और सहयोग की भावना को स्पष्ट करता है। उपनिषद भारतीय मूल्य-व्यवस्था को दार्शनिक गहराई प्रदान करते हैं।

उपनिषदों में प्रतिपादित “अहं ब्रह्मास्मि” और “तत्त्वमसि” जैसे महावाक्य इस विचार को पुष्ट करते हैं कि सभी प्राणी एक ही परम सत्य के अंश हैं। यह अवधारणा समानता और बंधुत्व का आधार बनी।

महाआरण्यक उपनिषद में कहा गया है—

“अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥”

(यह मेरा है और वह पराया है— ऐसा भेदभाव संकीर्ण बुद्धि वाले लोग करते हैं; उदार चरित्र वाले लोग तो पूरी पृथ्वी को परिवार मानते हैं।) यह भावना धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र दोनों के लिए आधारशिला है।

उपनिषदों में सत्य, तप, दया और आत्मसंयम को उच्चतम मूल्य माना गया। ये लोकतांत्रिक आचरण के भी मूल हैं। महाभारत का ‘गीता उपदेश’ भारतीय मूल्य-व्यवस्था की व्यावहारिक नींव है।

गीता कहती है—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”

(तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है, फलों में नहीं।) यह सिद्धांत कर्तव्य-निष्ठा को सर्वोच्च मूल्य बनाता है। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं—

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।”

(श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करता है, सामान्य लोग उसका अनुसरण करते हैं।) इसका तात्पर्य है कि नेतृत्व का

कार्य व्यक्तिगत लाभ नहीं बल्कि लोकसंग्रह अर्थात् समाज की एकता और कल्याण के लिए होना चाहिए। गीता में प्रतिपादित है—

“विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥”

(पण्डितजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चांडाल में समान दृष्टि रखते हैं।)

यह समता और सर्वधर्म समभाव की शिक्षा है। भारतीय मूल्य-व्यवस्था को सबसे व्यावहारिक स्वरूप बुद्ध और महावीर ने दिया।

बौद्ध धर्म में अहिंसा, करुणा, मैत्री और प्रज्ञा बौद्ध मूल्य-व्यवस्था के आधार बने। बौद्ध संघ लोकतांत्रिक संस्था थी, जहाँ निर्णय बहुमत से लिए जाते थे। अशोक महान ने ‘धम्म नीति’ के माध्यम से धर्मनिरपेक्ष शासन का उदाहरण प्रस्तुत किया।

जैन धर्म में अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य और अनेकांतवाद जैन मूल्य-व्यवस्था के केंद्र में रहे। अनेकांतवाद ने यह सिखाया कि सत्य के अनेक रूप हो सकते हैं, इसलिए सहिष्णुता आवश्यक है। यह विचार आज के लोकतंत्र में बहुलतावाद की अवधारणा का आधार है।

मध्यकाल में भारत में विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों का संगम हुआ। सूफी संतों ने प्रेम, भाईचारा और ईश्वर-भक्ति को महत्व दिया। भक्ति आंदोलन के संतों — कबीर, तुलसी, सूर, मीरा ने जाति और धर्म के भेदभाव का विरोध कर समानता और भक्ति को सर्वोच्च मूल्य माना। इस काल में धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक एकता को बार-बार बल मिला, जिसने आगे चलकर भारतीय धर्मनिरपेक्षता की नींव मजबूत की।

आधुनिक भारत में राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, नेहरू और आंबेडकर ने भारतीय मूल्य-व्यवस्था को नए आयाम दिए। राजा राममोहन राय – उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता और

सामाजिक सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। स्वामी विवेकानंद – “सभी धर्म सत्य हैं” का संदेश देकर उन्होंने वैश्विक स्तर पर भारतीय मूल्य-व्यवस्था का प्रचार किया। महात्मा गांधी – सत्य, अहिंसा और सर्वधर्मसमभाव को स्वतंत्रता आंदोलन का आधार बनाया। नेहरू – धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की आधुनिक अवधारणा प्रस्तुत की। डॉ. अम्बेडकर – सामाजिक न्याय और समानता पर आधारित संवैधानिक मूल्य स्थापित किए।

3. भारतीय मूल्य-व्यवस्था की विशेषताएँ

1. सर्वधर्मसमभाव – सभी धर्मों का समान सम्मान।
2. विविधता में एकता – अनेकता को स्वीकार कर समरसता स्थापित करना।
3. लोकसंग्रह और सर्वजनहिताय – समाज और राष्ट्र के कल्याण को व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर रखना।
4. अहिंसा और करुणा – संघर्ष की बजाय सहअस्तित्व को बढ़ावा देना।
5. समता और न्याय – सभी को समान अधिकार और अवसर प्रदान करना।

भारत का जीवन-दर्शन सदैव समावेशी, सहिष्णु और मानवतावादी रहा है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक भारतीय समाज ने ऐसे मूल्य विकसित किए हैं, जिन्होंने लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की नींव को सुदृढ़ किया। भारतीय मूल्य-व्यवस्था न केवल भारत के लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष स्वरूप की आधारशिला है, बल्कि यह सम्पूर्ण विश्व के लिए भी एक आदर्श प्रस्तुत करती है।

लोकतंत्र को सामान्यतः एक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में देखा जाता है, किंतु भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसका स्वरूप कहीं अधिक व्यापक है। यह केवल शासन-प्रणाली नहीं, बल्कि एक जीवन-दर्शन है, जो भारतीय संस्कृति और मूल्य-व्यवस्था में हजारों वर्षों से प्रवाहित हो रहा है। यहाँ लोकतंत्र केवल सत्ता हस्तांतरण का तंत्र नहीं,

बल्कि सामाजिक - सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक सहिष्णुता और नैतिक कर्तव्यों की एक समन्वित प्रणाली है।

भारतीय लोकतंत्र की विशिष्टता यह है कि यह दार्शनिक आधार पर टिका है। वेदों से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय मनीषियों ने बार-बार यह प्रतिपादित किया कि समाज का संचालन व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता, करुणा और धर्मपालन की स्वतंत्रता पर आधारित होना चाहिए। यही कारण है कि भारतीय लोकतंत्र की जड़ें इतनी गहरी और स्थायी हैं कि उसने अनेक आघातों, आक्रमणों और सांस्कृतिक परिवर्तनों के बावजूद अपनी आत्मा को जीवित रखा।

भारतीय लोकतंत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए हमें प्राचीन ग्रंथों की ओर देखना होगा।

वैदिक साहित्य में लोकतांत्रिक संकेत स्पष्ट तौर पर प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में "सभा" और "समिति" का उल्लेख मिलता है।

सभा : विद्वानों और बुद्धिजीवियों की परिषद, जहाँ गहन विचार-विमर्श होता था।

समिति : जनसाधारण की सभा, जिसमें सामूहिक निर्णय लिए जाते थे।

ऋग्वेद (10.191.2) में कहा गया है—

“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥”

(अर्थ: तुम सब मिलकर चलो, मिलकर बोलो और अपने मनो को एक करो। जिस प्रकार पूर्वजों ने मिलकर देवताओं की उपासना की, वैसे ही तुम भी सामूहिक रूप से कार्य करो।)

यह श्लोक लोकतंत्र की उस मूल भावना को प्रकट करता है जिसमें सामूहिक निर्णय, सहभागिता और एकता पर बल है।

महाभारत महाकाव्य में लोकतांत्रिक आदर्श की महत्ता सर्वविदित है। महाभारत में कहा गया है कि राजा प्रजा का सेवक है, स्वामी नहीं। भीष्म ने युधिष्ठिर को

नीति शास्त्र समझाते हुए कहा कि राजधर्म का मुख्य उद्देश्य प्रजा की रक्षा और कल्याण है। “प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्” (शान्तिपर्व) (राजा का सुख प्रजा के सुख में और उसका हित प्रजा के हित में निहित है।) यह स्पष्ट रूप से लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को दर्शाता है।

बौद्ध ग्रंथों में लिच्छवि गणराज्य और वज्जि संघ का उल्लेख मिलता है। ये राज्य पूर्ण राजतंत्रीय नहीं थे, बल्कि उनमें सामूहिक सभा, मतदान और बहुमत से निर्णय की परंपरा थी। बुद्ध ने स्वयं संघ की कार्यप्रणाली में लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ स्थापित कीं—संवाद, बहस, मतदान, बहुमत का आदर आदि। “बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय” का उनका आदर्श लोकतंत्र की आत्मा है।

जैन दर्शन के *अनेकान्तवाद* और *स्याद्वाद* सिद्धांत लोकतांत्रिक दृष्टिकोण को और मजबूत करते हैं। *अनेकान्तवाद* कहता है कि सत्य अनेक दृष्टिकोणों से जाना जा सकता है। इसका लोकतांत्रिक अर्थ है कि समाज में हर व्यक्ति का दृष्टिकोण मूल्यवान है।

भारतीय दर्शन लोकतंत्र की नींव केवल राजनीतिक संस्थाओं में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और नैतिक विचारों में रखता है।

उपनिषदों के आत्मदर्शन से समानता और बन्धुत्व की दृष्टि परिलक्षित होती है। “अहम् ब्रह्मास्मि” और “तत्त्वमसि” जैसे महावाक्य बताते हैं कि सभी आत्माएँ समान हैं।

जब आत्मा समान है तो जाति, वर्ग या लिंग पर आधारित भेदभाव अनुचित है। यह समानता लोकतंत्र की मूल आत्मा है। गीता के कर्मयोग सिद्धांत में कहा गया— “कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।” लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी प्रतिनिधियों का कर्तव्य है— कर्तव्यपालन, न कि केवल व्यक्तिगत लाभ।

बौद्ध दर्शन में करुणा, अहिंसा और संघ की संगठनात्मक संरचना लोकतंत्र का सबसे सुंदर रूप है। बुद्ध ने कहा—

“अप्प दीपो भवा।” (अपने दीपक स्वयं बनो।) यह लोकतंत्र में व्यक्ति की स्वायत्तता का उद्घोष है। जैन दर्शन में *अहिंसा परमो धर्मः*— अहिंसा लोकतंत्र का नैतिक स्तंभ है, क्योंकि हिंसा और दमन से लोकतांत्रिक संवाद असंभव है।

भारतीय धर्मनिरपेक्षता पश्चिमी *Secularism* से भिन्न है। पश्चिम में इसका अर्थ है—राज्य और चर्च का पृथक्करण। भारत में इसका अर्थ है— *सर्वधर्मसमभाव*।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25-28 धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं। इसकी जड़ें प्राचीन परंपराओं में हैं। अशोक ने अपने शिलालेखों में कहा था— “सभी धर्मों का सम्मान करो।” अकबर ने “सुलह-ए-कुल” (सर्वजन सद्भाव) की नीति अपनाई।

भारत में 22 अनुसूचित भाषाएँ, सैकड़ों बोलियाँ, अनेक धर्म और जातीय विविधताएँ हैं। फिर भी भारतीय लोकतंत्र ने इन्हें एक सूत्र में बाँधा है। *वसुधैव कुटुम्बकम्*—संपूर्ण विश्व एक परिवार है। *एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति*—सत्य एक है, पर विद्वान् उसे अनेक रूपों में व्यक्त करते हैं।

यह विचार लोकतंत्र को सहिष्णुता और बहुलतावाद प्रदान करते हैं।

गांधीजी के अनुसार, लोकतंत्र का आधार केवल कानून नहीं, बल्कि नैतिकता और आत्मनियंत्रण है। उन्होंने कहा—“लोकतंत्र की आत्मा सत्य और अहिंसा है।” ग्राम स्वराज उनकी लोकतांत्रिक दृष्टि का वास्तविक स्वरूप था। उन्होंने लोकतंत्र को वैज्ञानिक दृष्टि और तर्कशीलता से जोड़ा। उनके अनुसार, लोकतंत्र का उद्देश्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक प्रगति करना है।

आंबेडकर ने कहा— “लोकतंत्र केवल सरकार का एक रूप नहीं, बल्कि यह सामाजिक जीवन का एक तरीका है।” उन्होंने चेतावनी दी कि यदि सामाजिक असमानता बनी रही तो राजनीतिक लोकतंत्र अस्थायी होगा। उनके लिए लोकतंत्र का अर्थ था— समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व।

भारतीय लोकतंत्र ने विश्व को यह सिखाया है कि बहुलता और विविधता लोकतंत्र को कमजोर नहीं करती, बल्कि उसे और मजबूत बनाती है। आज जब कई देशों में धार्मिक और सांस्कृतिक असहिष्णुता बढ़ रही है, भारतीय लोकतंत्र *सर्वधर्मसमभाव* और *विविधता में एकता* का आदर्श प्रस्तुत करता है।

भारतीय लोकतंत्र का दार्शनिक और सांस्कृतिक आधार आध्यात्मिक समानता, सहिष्णुता, करुणा और कर्तव्य में निहित है। यह केवल संविधान में अंकित प्रावधानों का परिणाम नहीं, बल्कि हजारों वर्षों की परंपराओं, अनुभवों और विचारों का परिष्कृत रूप है। धर्मनिरपेक्षता इसका हृदय है, जो सभी धर्मों और संस्कृतियों को समान सम्मान देती है। भारतीय लोकतंत्र राजनीतिक शासन से आगे बढ़कर एक जीवन-पद्धति बन जाता है, जो मानवता के कल्याण और वैश्विक शांति की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

धर्मनिरपेक्षता (Secularism) आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं का मूलधार है। परंतु इसका स्वरूप और आशय पूर्व और पश्चिम में भिन्न-भिन्न रूप से विकसित हुआ है। पाश्चात्य समाज में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ प्रायः राज्य और चर्च का पृथक्करण माना जाता है, जबकि भारतीय परंपरा में यह शब्द सर्वधर्मसमभाव और समान आदर का पर्याय है।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था में धर्मनिरपेक्षता की जड़ें अत्यंत गहरी हैं। यहाँ धर्म का तात्पर्य केवल धार्मिक अनुष्ठान या पूजा-पद्धति तक सीमित नहीं, बल्कि नैतिक कर्तव्य, आचार और जीवन-व्यवस्था से है। इसीलिए

भारतीय धर्मनिरपेक्षता केवल राजनीतिक सिद्धांत नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और दार्शनिक परंपरा है।

पाश्चात्य धर्मनिरपेक्षता का उदय यूरोप के मध्ययुगीन इतिहास और पुनर्जागरण (Renaissance) की पृष्ठभूमि में हुआ। चर्च और राज्य के बीच संघर्ष ने वहाँ यह आवश्यकता उत्पन्न की कि राज्य धार्मिक संस्थाओं से अलग होकर नागरिकों की समानता सुनिश्चित करे। 16वीं शताब्दी के सुधार आंदोलन (Reformation) और 18वीं शताब्दी की प्रबोधन (Enlightenment) विचारधारा ने धर्मनिरपेक्षता को नई दिशा दी। जॉन लॉक, वोल्तेयर और रूसो जैसे चिंतकों ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और विवेकाधिकार को सर्वोपरि माना। उनके लिए धर्मनिरपेक्षता का अर्थ था—राज्य का धर्म के प्रति तटस्थ होना और धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करना।

इसी तरह भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा की जड़ें वैदिक, उपनिषद्, बौद्ध और जैन परंपराओं में हैं। ऋग्वेद कहता है— “एकं सद्ब्रिप्रा बहुधा वदन्ति।” (सत्य एक है, विद्वान उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।) महाभारत कहता है— “धर्मो रक्षति रक्षितः।” (धर्म की रक्षा करने वाला स्वयं धर्म द्वारा सुरक्षित रहता है।) अशोक के शिलालेख स्पष्ट रूप से धार्मिक सहिष्णुता और सभी मतों के सम्मान की शिक्षा देते हैं। अकबर की सुलह-ए-कुल नीति भी भारतीय धर्मनिरपेक्षता का ऐतिहासिक उदाहरण है-

सभी धर्मों का समान सम्मान (सर्वधर्मसमभाव)। धर्म को नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य के रूप में देखना, न कि केवल पूजा-पद्धति के रूप में। राज्य द्वारा सभी धर्मों को समान अवसर और संरक्षण। सामाजिक समरसता और विविधता में एकता। धर्म और लोकतंत्र का परस्पर पूरक संबंध।

भारतीय धर्मनिरपेक्षता का आधार वसुधैव कुटुम्बकम्, अहिंसा परमो धर्मः, सर्वे भवन्तु सुखिनः जैसी

परंपराओं में निहित है। यहाँ धर्म का अर्थ नैतिकता, कर्तव्य और सामाजिक उत्तरदायित्व से है।

भारतीय और पाश्चात्य धर्मनिरपेक्षता : मूलभूत अंतर

पहलू	पाश्चात्य धर्मनिरपेक्षता	भारतीय धर्मनिरपेक्षता
ऐतिहासिक संदर्भ	चर्च और राज्य का संघर्ष	विविधता और बहुलता की सांस्कृतिक परंपरा
स्वरूप	राज्य और धर्म का पृथक्करण	सभी धर्मों का समान सम्मान
धर्म की अवधारणा	केवल पूजा-पद्धति और आस्था तक सीमित	नैतिक कर्तव्य और जीवन-शैली
लक्ष्य	धार्मिक तटस्थता	धार्मिक सहअस्तित्व और समरसता
व्यवहारिक परिणाम	धर्म सार्वजनिक जीवन से बाहर	धर्म सार्वजनिक जीवन में सहिष्णुता और नैतिकता के रूप में उपस्थित

भारतीय संविधान ने धर्मनिरपेक्षता को मौलिक अधिकारों और राज्य की नीति-निर्देशक सिद्धांतों में स्थापित किया। अनुच्छेद 25-28 : धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी। अनुच्छेद 14: कानून के समक्ष समानता। अनुच्छेद 15: धर्म, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध। अनुच्छेद 51A: नागरिकों का कर्तव्य है कि वे सहिष्णुता और भाईचारे को बढ़ावा दें।

भारतीय संविधान में जो धर्मनिरपेक्षता है, वह न केवल पश्चिम से प्रभावित है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना का पुनःसंगठित रूप है। गांधीजी के अनुसार, भारतीय धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है— “सभी धर्मों का समान आदर।” वे कहते थे, “सच्चा धर्म कभी असहिष्णु नहीं हो सकता।” नेहरू के अनुसार उन्होंने धर्मनिरपेक्षता को वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आधुनिक लोकतंत्र की आत्मा माना। डॉ. आंबेडकर के अनुसार उनके लिए

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ था— समान नागरिकता, सामाजिक न्याय और भेदभाव का उन्मूलन।

भारतीय धर्मनिरपेक्षता व्यवहार में कई चुनौतियों का सामना कर रही है-

- सांप्रदायिकता और धार्मिक धुवीकरण।
- राजनीति में धर्म का उपयोग।
- जातिगत असमानताएँ और सामाजिक भेदभाव।
- अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा।

भारतीय और पाश्चात्य धर्म निरपेक्षता में मूलभूत अंतर उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और दार्शनिक दृष्टिकोण में है। पाश्चात्य धर्मनिरपेक्षता धर्म को सार्वजनिक जीवन से बाहर करती है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता धर्म को सार्वजनिक जीवन में सहिष्णुता, नैतिकता और समरसता के रूप में स्वीकार करती है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र का संबंध पूरक और सहजीवी है। यह संबंध भारतीय मूल्य-व्यवस्था की विशिष्ट पहचान है, जिसने आज के वैश्विक संदर्भ में भी मार्गदर्शन करने की क्षमता सिद्ध की है।

भारतीय संस्कृति और मूल्य-व्यवस्था ने सहस्राब्दियों से जिस गहन और व्यापक जीवन-दर्शन का निर्माण किया है, उसका सबसे महत्वपूर्ण आयाम सहिष्णुता, समन्वय और विविधता का सम्मान रहा है। यह वही आधार है, जिस पर आधुनिक भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता का ढाँचा खड़ा है। भारतीय लोकतंत्र केवल राजनीतिक संस्थानों या संविधानिक प्रावधानों का ही परिणाम नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज के उन गहरे मूल्यों का प्रतिफल है, जो “वसुधैव कुटुम्बकम्”, “सर्वे भवन्तु सुखिनः” और “लोकसंग्रह” जैसी अवधारणाओं में निहित हैं।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था में स्वतंत्रता केवल राजनीतिक अर्थ में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अर्थों में भी देखी जाती है। ऋग्वेद में कहा गया

है – “मा गृधः कस्यस्विद्धनम्” अर्थात् किसी और की संपत्ति पर लालच न करो। यह वाक्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता और परस्पर सम्मान की भावना का द्योतक है।

लोकतंत्र का मूलाधार नागरिक की स्वतंत्रता है। भारतीय संविधान ने इसे मौलिक अधिकारों के रूप में स्थापित किया है। किंतु यह स्वतंत्रता अनियंत्रित न होकर धर्म और कर्तव्य से बंधी है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा— “स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः”। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग अपने धर्म अर्थात् कर्तव्य-पालन में करना चाहिए।

अतः भारतीय मूल्य-व्यवस्था स्वतंत्रता को केवल व्यक्तिगत अधिकार नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में देखती है। यही दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की आत्मा है।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था में “समता” का भाव अत्यंत प्राचीन है। उपनिषदों में कहा गया है – “ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति”, अर्थात् ईश्वर सभी प्राणियों में समान रूप से विद्यमान है। यह विचार सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्तर पर समानता की पुष्टि करता है।

भारतीय लोकतंत्र की सफलता इसी पर आधारित है कि यहाँ जाति, धर्म, लिंग, भाषा या क्षेत्र के आधार पर किसी को भेदभाव का शिकार न होना पड़े। संविधान में समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18) इसी मूल्य का संवैधानिक रूपांतरण है।

धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र का मूल तत्व है कि राज्य सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखे। भारतीय मूल्य-व्यवस्था की यह समतावादी दृष्टि धर्मनिरपेक्षता को मजबूती देती है।

लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप केवल स्वतंत्रता और समानता से नहीं बनता; उसे बंधुत्व (fraternity) भी आवश्यक है। भारतीय संस्कृति का मूल वाक्य है – “संगच्छेद्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्” (ऋग्वेद)।

अर्थात् मिलकर चलो, मिलकर बोलो और मिलकर सोचो। यह सामूहिकता और भाईचारे की भावना लोकतंत्र का प्राणतत्व है।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था में यह विश्वास रहा है कि सभी प्राणी एक ही परमात्मा की संतान हैं। इसी कारण यहाँ वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श विकसित हुआ। यह आदर्श लोकतांत्रिक जीवन में बंधुत्व के रूप में प्रकट होता है, जो धर्मनिरपेक्षता को सामाजिक आधार देता है।

भारतीय समाज बहुधार्मिक, बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक है। यदि यहाँ सहिष्णुता और विविधता के सम्मान का मूल्य न होता, तो इतनी दीर्घ अवधि तक यह समाज एक साथ नहीं रह सकता था।

उपनिषदों में कहा गया है – “एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति” अर्थात् सत्य एक है, परन्तु ज्ञानी उसे अलग-अलग नामों से पुकारते हैं। यही दृष्टिकोण भारतीय धर्मनिरपेक्षता का मूल है।

धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र का अर्थ केवल धर्म से दूरी नहीं, बल्कि सभी धर्मों का सम्मान है। भारतीय मूल्य-व्यवस्था की यह सहिष्णुता लोकतांत्रिक राजनीति को स्थिरता और स्वीकार्यता प्रदान करती है।

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा – “यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः”। अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करता है, वही अन्य लोग अनुसरण करते हैं। यहाँ लोकसंग्रह की अवधारणा निहित है।

लोकसंग्रह का तात्पर्य है – समाज के व्यापक हित में आचरण करना। लोकतंत्र में नेताओं और शासकों से यही अपेक्षा की जाती है कि वे केवल निजी हित में नहीं, बल्कि जनहित में कार्य करें। यह भारतीय मूल्य-व्यवस्था का राजनीतिक रूप है।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था अधिकारों से अधिक कर्तव्य पर बल देती है। मनुस्मृति में कहा गया है – “धर्मं सर्वं प्रतिष्ठितम्”। लोकतंत्र में नागरिकों के अधिकार

महत्वपूर्ण हैं, किंतु यदि वे अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करेंगे, तो लोकतंत्र कमजोर पड़ जाएगा।

भारतीय संविधान में भी अनुच्छेद 51(क) के अंतर्गत नागरिकों के मूल कर्तव्यों का उल्लेख इसी मूल्य दृष्टि का प्रतिफल है। धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र का सशक्तीकरण तभी संभव है, जब नागरिक अपने अधिकारों के साथ अपने कर्तव्यों का भी पालन करें।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था केवल राष्ट्रीय स्तर तक सीमित नहीं, बल्कि वैश्विक दृष्टिकोण रखती है। महाउपनिषद में कहा गया है – “अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्, उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्” अर्थात् संकीर्ण दृष्टि वाले लोग कहते हैं – यह अपना है, यह पराया है; किंतु उदार चरित्र वाले लोग पूरी पृथ्वी को परिवार मानते हैं।

यह मूल्य लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की वैश्विक प्रासंगिकता को दर्शाता है। जब विश्व में संकीर्ण राष्ट्रवाद और धार्मिक संघर्ष बढ़ रहे हैं, तब भारतीय मूल्य-व्यवस्था लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता को व्यापक मानवीय दृष्टि प्रदान करती है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित – न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व – वस्तुतः भारतीय मूल्य-व्यवस्था के ही संवैधानिक रूपांतरण हैं। धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र इन मूल्यों के बिना जीवित नहीं रह सकता।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था ने लोकतंत्र को केवल संस्थागत संरचना ही नहीं दी, बल्कि उसे नैतिक और आध्यात्मिक आधार भी प्रदान किया। यही कारण है कि भारतीय लोकतंत्र विविधता के बावजूद स्थिर और जीवंत बना हुआ है।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र का संबंध परस्पर पूरक है। स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व,

सहिष्णुता, लोकसंग्रह और वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे मूल्य भारतीय लोकतंत्र की आत्मा हैं।

भारतीय धर्मनिरपेक्षता पश्चिमी *secularism* से भिन्न है; यह धर्म से दूरी नहीं, बल्कि सभी धर्मों का सम्मान है। भारतीय लोकतंत्र को यदि विश्व में आदर्श माना जाता है, तो इसका कारण यही है कि इसकी जड़ें भारतीय मूल्य-व्यवस्था में गहराई से पैठी हुई हैं।

भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप अपनी सांस्कृतिक और दार्शनिक गहराई के कारण अद्वितीय है। हालांकि यह प्रणाली प्राचीन मूल्य-परंपराओं पर आधारित है, इसके बावजूद आधुनिक भारत में कई चुनौतियाँ उपस्थित हैं।

इन चुनौतियों में सांप्रदायिकता, जातिगत भेदभाव, धर्म का राजनीतिकरण, आर्थिक असमानता, शिक्षा और सामाजिक जागरूकता की कमी प्रमुख हैं।

भारत एक बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक समाज है। यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी आदि अनेक समुदाय निवास करते हैं। हालांकि भारतीय संविधान ने सभी को समान अधिकार और सम्मान दिया है, फिर भी धार्मिक ध्रुवीकरण लोकतंत्र की स्थिरता के लिए खतरा है। राजनीतिक दल कभी-कभी धार्मिक भावनाओं का उपयोग कर वोट बैंक राजनीति करते हैं। सामाजिक स्तर पर संकीर्ण धार्मिक दृष्टिकोण से आपसी संघर्ष और असहमति बढ़ती है। यह स्थिति संविधान और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की आत्मा के विपरीत है।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था में सहिष्णुता और “एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति” जैसे सिद्धांत समाधान का आधार हैं। शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से सामाजिक सहिष्णुता बढ़ाई जा सकती है। धर्मनिरपेक्ष कानूनों का पालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। धार्मिक नेताओं और संगठनों को संवाद और सामूहिक कल्याण पर केंद्रित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। भारतीय लोकतंत्र ने जाति व्यवस्था और सामाजिक भेदभाव के खिलाफ संवैधानिक उपाय किए हैं। अनुच्छेद 15 और 17 जातिगत भेदभाव को निषिद्ध करते हैं। सामाजिक पूर्वाग्रह और परंपरागत

भेदभाव आज भी ग्रामीण और शहरी समाज में विद्यमान हैं। दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्गों को समान अवसर और शिक्षा में असमानता का सामना करना पड़ता है। सामाजिक असमानता से राजनीतिक असंतोष और लोकतंत्र की कमजोरियाँ उत्पन्न होती हैं। भारतीय मूल्य-व्यवस्था में अहिंसा, करुणा और समानता को मूलाधार माना गया है।

शिक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण के माध्यम से सामाजिक असमानता को कम किया जा सकता है। संवैधानिक आरक्षण और समावेशी नीतियाँ समाज के पिछड़े वर्गों को मुख्यधारा में लाने में सहायक हैं। नागरिकों को कर्तव्यनिष्ठ और नैतिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करना आवश्यक है।

राजनीति में धर्म का उपयोग अक्सर वोट बैंक के रूप में किया जाता है। इससे धार्मिक ध्रुवीकरण और समाज में असमानता बढ़ती है। लोकतंत्र की नैतिक और संवैधानिक नींव कमजोर होती है। भारतीय मूल्य-व्यवस्था में नैतिकता, धर्मनिरपेक्षता और न्याय पर जोर है। राजनीतिक नेताओं और संगठनों को धर्म से ऊपर उठकर नीति और विकास पर ध्यान देना चाहिए। संविधानिक शिक्षा और नागरिक जागरूकता धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को मजबूत कर सकती हैं। न्यायपालिका और प्रशासन को निष्पक्ष और धर्मनिरपेक्ष निर्णय लेने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए।

भारतीय लोकतंत्र में गरीब और अमीर के बीच असमानता एक महत्वपूर्ण चुनौती है। आर्थिक असमानता सामाजिक असंतोष, जातिगत और धार्मिक तनाव को बढ़ावा देती है। भारतीय मूल्य-व्यवस्था में लोकसंग्रह और धर्मार्थ दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हैं-

- समान अवसर प्रदान करना, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को सार्वभौमिक बनाना।
- समाज में उदारता और दान-धर्म की भावना को बढ़ावा देना।

- नीतियों में सामाजिक न्याय और आर्थिक सशक्तिकरण को प्राथमिकता देना।
- भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की सफलता शिक्षा और जागरूकता पर निर्भर है।
- नागरिकों में संवैधानिक अधिकार और कर्तव्यों की जानकारी का अभाव।
- सामाजिक पूर्वाग्रह और संकीर्ण दृष्टिकोण लोकतंत्र की स्थिरता में बाधक।
- विद्यालय और विश्वविद्यालय में लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता पर व्यापक शिक्षा।
- सामुदायिक कार्यक्रमों और मीडिया के माध्यम से जागरूकता बढ़ाना।
- युवाओं में सामाजिक जिम्मेदारी और नैतिकता की भावना विकसित करना।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था में नैतिकता, करुणा, सहिष्णुता और सामाजिक उत्तरदायित्व लोकतंत्र का आधार हैं-

- धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से सहिष्णुता और भाईचारे का प्रचार।
- युवाओं में नैतिक शिक्षा और समाजसेवा के प्रति जागरूकता।
- मीडिया और साहित्य के माध्यम से सकारात्मक मूल्यों का संवर्धन।
- नीति निर्माण में नागरिकों की सहभागिता और पारदर्शिता बढ़ाना।

भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की चुनौतियाँ सांप्रदायिकता, जातिगत भेदभाव, धर्म का राजनीतिकरण, आर्थिक असमानता और सामाजिक जागरूकता की कमी हैं। भारतीय मूल्य-व्यवस्था के स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, सहिष्णुता, लोकसंग्रह और वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे मूल्य इन चुनौतियों का समाधान प्रदान करते हैं।

भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप अद्वितीय है, क्योंकि यह केवल राजनीतिक या

संवैधानिक ढाँचे तक सीमित नहीं है। यह भारतीय मूल्य-व्यवस्था, संस्कृति और दार्शनिक परंपराओं का प्रतीक है। इस शोध पत्र में हमने देखा कि भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की जड़ें प्राचीन भारतीय दर्शन, वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, बौद्ध और जैन परंपराओं में हैं। भारतीय समाज ने सदैव समानता, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय के मूल्यों को महत्व दिया। यही कारण है कि भारतीय लोकतंत्र बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक और बहुभाषी समाज में भी जीवंत और स्थिर बना हुआ है। भारतीय लोकतंत्र केवल सरकार या संविधान की संस्था नहीं, बल्कि एक जीवन-दर्शन है-

1. **स्वतंत्रता** – नागरिकों को अपनी आस्था, विचार और जीवन-शैली के लिए पूर्ण स्वतंत्रता।
2. **समानता** – जाति, धर्म, लिंग और सामाजिक स्थिति के बावजूद सभी नागरिकों का समान अधिकार।
3. **बंधुत्व और सहिष्णुता** – समाज में भाईचारा और सभी धर्मों तथा संस्कृतियों के प्रति सम्मान।
4. **लोकसंग्रह और कर्तव्य** – व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों का पालन, जिससे लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की नींव मजबूत होती है।

भारतीय लोकतंत्र की विशिष्टता यह है कि यह इन मूल्यों को केवल आदर्श नहीं मानता, बल्कि उन्हें व्यवहार और नीति निर्माण में लागू करता है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप पाश्चात्य धर्मनिरपेक्षता से भिन्न है-

1. **सर्वधर्मसमभाव** – सभी धर्मों को समान सम्मान और संरक्षण।
2. **धर्म का सामाजिक और नैतिक आधार** – धर्म केवल पूजा-पद्धति तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन के नैतिक और सामाजिक निर्णयों में मार्गदर्शन करता है।
3. **समान नागरिकता** – सभी नागरिक, चाहे किसी भी धर्म के हों, संविधान के समक्ष समान हैं।

4. **सांस्कृतिक-राजनीतिक सहिष्णुता** – बहुलता में एकता और सामाजिक समरसता का आदर्श।

इस प्रकार, भारतीय धर्मनिरपेक्षता धर्म को सार्वजनिक जीवन से अलग नहीं करती, बल्कि इसे नैतिक, सामाजिक और लोकतांत्रिक आधार के रूप में स्वीकार करती है। इस शोध पत्र में हमने देखा कि भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता कई चुनौतियों का सामना कर रही हैं, जैसे:

1. **सांप्रदायिकता और धार्मिक धुवीकरण** – समाधान: शिक्षा, जागरूकता और संवाद।
2. **जातिगत असमानता** – समाधान: संवैधानिक आरक्षण, शिक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण।
3. **धर्म का राजनीतिकरण** – समाधान: निष्पक्ष प्रशासन और नैतिक राजनीति।
4. **आर्थिक असमानता** – समाधान: समान अवसर और सामाजिक न्याय।
5. **शिक्षा और जागरूकता की कमी** – समाधान: लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता पर व्यापक शिक्षा।

भारतीय मूल्य-व्यवस्था इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है और लोकतंत्र तथा धर्मनिरपेक्षता को सशक्त बनाती है। भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता केवल राष्ट्रीय नहीं, बल्कि वैश्विक संदर्भ में भी महत्वपूर्ण हैं।

1. **बहुलता में एकता का आदर्श** – वैश्विक स्तर पर विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के बीच सहिष्णुता का उदाहरण।
2. **सांस्कृतिक संवाद** – अन्य देशों को बहुधार्मिक सह-अस्तित्व की सीखा।
3. **वैश्विक लोकतांत्रिक मूल्य** – स्वतंत्रता, समानता और मानवाधिकार के सिद्धांत।
4. **विश्व शांति और सह-अस्तित्व** – भारतीय मूल्य-परंपरा का वैश्विक योगदान।

इस प्रकार, भारत का मॉडल बहुसांस्कृतिक समाजों और लोकतांत्रिक देशों के लिए मार्गदर्शन और प्रेरणा का स्रोत है।

भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की स्थिरता के लिए आवश्यक है:

1. **सकारात्मक शिक्षा और नागरिक जागरूकता** – संविधान और लोकतंत्र के महत्व की समझ।
2. **समानता और सामाजिक न्याय का निरंतर संवर्धन** – पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा।
3. **धार्मिक सहिष्णुता का संवर्धन** – बहुलता में एकता का निरंतर अभ्यास।
4. **नैतिक राजनीति और प्रशासन** – भ्रष्टाचार और धर्म-आधारित राजनीति से मुक्त शासन।
5. **वैश्विक दृष्टिकोण** – भारतीय मूल्य-परंपरा और लोकतांत्रिक आदर्शों को विश्व स्तर पर प्रस्तुत करना।

भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता का निष्कर्ष इस प्रकार है:

- यह केवल राजनीतिक या संवैधानिक संस्था नहीं, बल्कि भारतीय मूल्य-व्यवस्था का दर्पण है।
- स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, सहिष्णुता और लोकसंग्रह इसकी आत्मा हैं।
- भारतीय धर्मनिरपेक्षता धर्म को सार्वजनिक जीवन से अलग नहीं करती, बल्कि सभी धर्मों का सम्मान और नैतिक मार्गदर्शन देती है।
- चुनौतियों के बावजूद, भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की स्थिरता इसकी गहन सांस्कृतिक और दार्शनिक नींव से संभव है।
- वैश्विक संदर्भ में भारत का मॉडल बहुलता, सह-अस्तित्व और लोकतांत्रिक आदर्शों का प्रेरणास्रोत है।

इस प्रकार, भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि वैश्विक स्तर पर भी एक स्थायी और सशक्त आदर्श प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सूची

1. Appadorai, A. (2003). *The substance of politics*. Oxford University Press.
2. Ambedkar, B. R. (1945). *What Congress and Gandhi have done to the untouchables*. Thacker & Co.
3. Austin, G. (1999). *The Indian constitution: Cornerstone of a nation*. Oxford University Press.
4. Basu, D. D. (2015). *Introduction to the constitution of India*. LexisNexis.
5. Bhargava, R. (1997). Secularism in India. *Journal of Indian Philosophy*, 25.
6. Bhargava, R. (1998). *Secularism and its critics*. Oxford University Press.
7. Chatterjee, P. (1993). *The nation and its fragments*. Princeton University Press.
8. Chidbhavan, R. (2010). *Indian secularism: Concepts and practices*. Sage Publications.
9. Gandhi, M. K. (2007). *Hamare dharmnirpeksh vichar*. Rajkamal Prakashan.
10. Government of India. (1950). *The constitution of India*.
11. Government of India. (2005). *Report of the national commission for religious and cultural harmony*.
12. Hussain, S. S. (2009). *History of Mughal India*. [Publisher name missing].
13. IGNOU. (n.d.). *Secularism and Indian democracy*. eGyanKosh. <http://www.egyankosh.ac.in>
14. India.gov.in. (n.d.). *Constitution of India*. <https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india>
15. Lipner, J. (2010). *Hindus: Their religious beliefs and practices*. Routledge.
16. Locke, J. (1988). *Two treatises of government* (P. Laslett, Ed.). Cambridge University Press. (Original work published 1689).
17. Mill, J. S. (2008). *On liberty*. Oxford University Press. (Original work published 1859).
18. Ministry of Culture, Government of India. (n.d.). <https://www.indiaculture.nic.in>
19. Mishra, B. (Trans.). (2008). *Mahabharata: Kurukshetra adhyay sahit*. Vani Prakashan.
20. Montesquieu, C. (1989). *The spirit of the laws* (A. M. Cohler, B. C. Miller, & H. S. Stone, Eds. & Trans.). Cambridge University Press. (Original work published 1748).
21. Nandy, A. (1983). *The intimate enemy*. Oxford University Press.
22. Nehru, J. (1946). *The discovery of India*. Orient Longman.
23. Raychaudhuri, H. C. (1940). *Political history of ancient India*. University of Calcutta.
24. Sharma, A. (2000). *Modern Hindu thought*. Oxford University Press.
25. Sharma, P. S. (Trans.). (2012). *Upanishad – Saarbharbhity anuvad: Vedantik darshan*. Aryavart Prakashan.
26. Sharma, R. (2010). *Rigveda: Vedon ka sampurn adhyayan*. [Publisher name missing].
27. Sharma, R. V. (Trans. & Comm.). (2011). *Manusmriti: Anuvad aur tika*. Bhartiya Samaj Darshan.
28. Tagore, R. (1917). *Nationalism*. Macmillan.
29. Van der Veer, P. (1994). *Religious nationalism: Hindus and Muslims in India*. University of California Press.
30. Vivekananda, S. (2005). *Bhagavad Gita: Shri Krishna-Gita vyakhya*. Ramakrishna Math.
31. Wheare, K. C. (1966). *Modern constitutions*. Oxford University Press.